वर्ष:2 अंक: 6, जुलाई–सितम्बर, 2012

पारस–परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

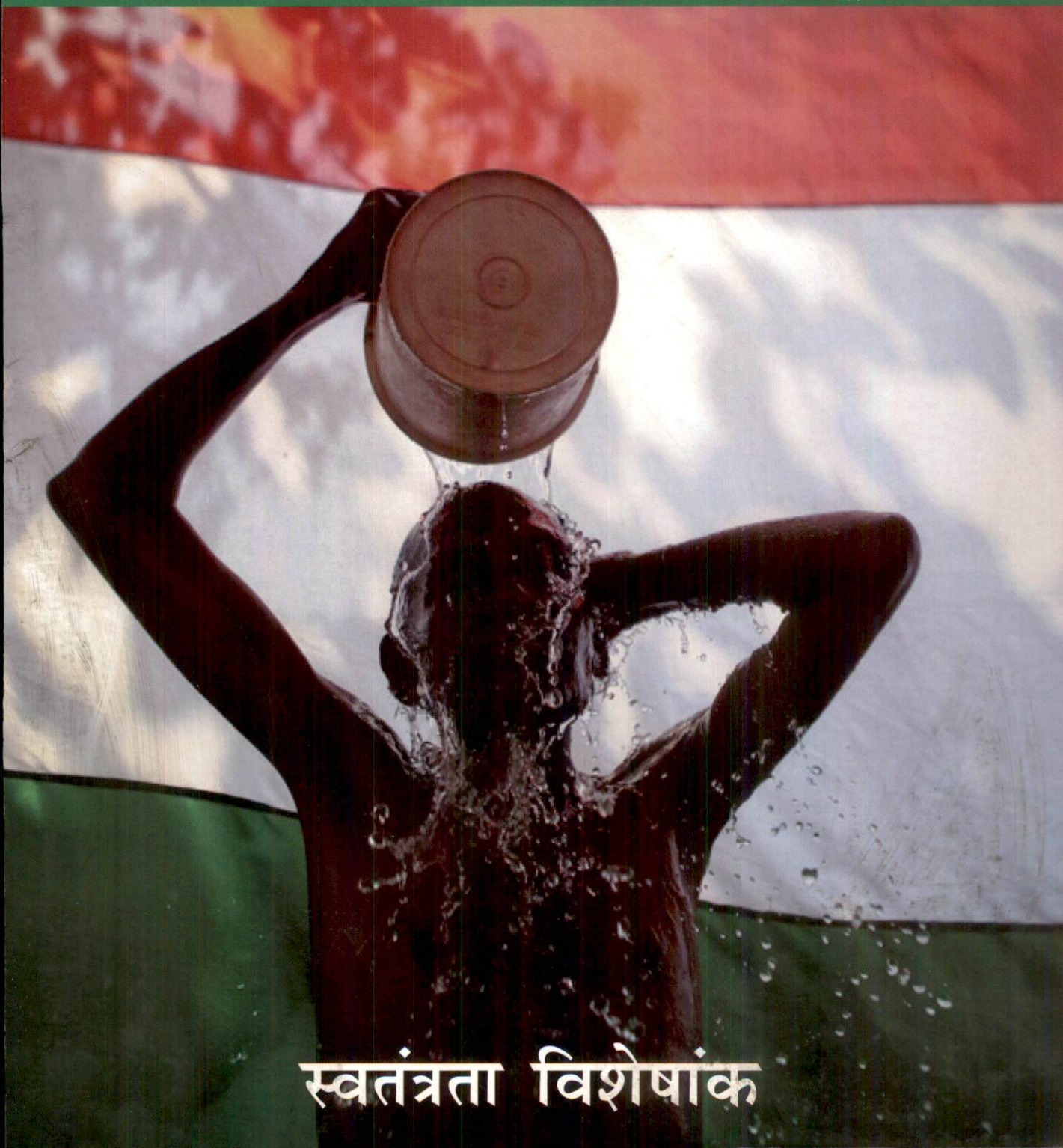

स्वतंत्रता विशेषांक

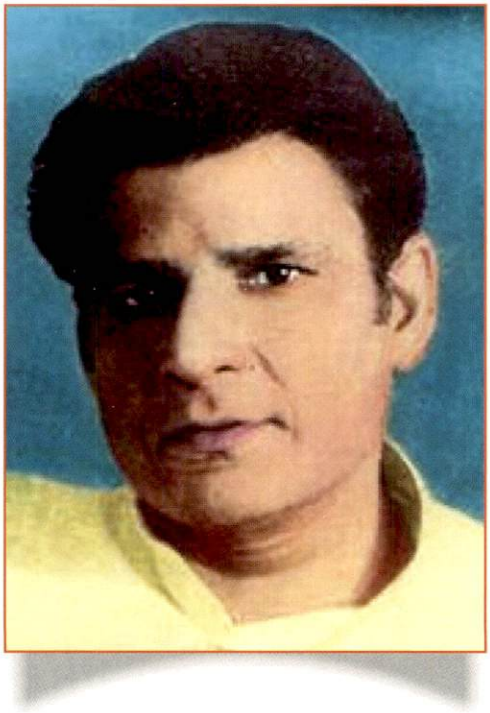

दुष्यन्त कुमार

(जन्मः 1 सितम्बर, 1933; निधनः 30 दिसम्बर, 1975)

रह रह आँखो में चुभती है पथ की निर्जन दोपहरी
आगे और बढ़े तो शायद दृश्य सुहाने आयेंगे
मेले में भटके होते तो कोई घर पहुंचा जाता
हम घर मे भटके हैं कैसे ठौर–ठिकाने आयेंगे।

वर्ष : 2, अंक : 6, जुलाई–सितम्बर, 2012 रजि. नं. यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की प्रतिनिधि एवं संग्रहणीय अंतर्राष्ट्रीय त्रैमासिकी

स्वतंत्रता विशेषांक

अनुक्रमणिका

संरक्षक मंडल
डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
अभिमन्यु कुमार पाठक;
अरुण कुमार पाठक;
राजेश प्रकाश;
डॉ. अशोक मधुप

प्रधान संपादक
डा॰ सुनील जोगी

संपादक
शिवकुमार बिलग्रामी

संपादकीय कार्यालय
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभयखण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद – 201012
मो. :08826365221

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः
डिजाइन मार्ट
9911424488

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा **प्रसून प्रतिष्ठान** के लिए **डॉ. अनिल कुमार पाठक** द्वारा **आप्शन प्रिन्टोफास्ट पटपड़गंज इन्ड. एरिया तथा 257, गोलागंज, लखनऊ** से मुद्रित एवं सी–49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड, लखनऊ से प्रकाशित ।

पारस–परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है । पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

संपादकीय		2
पाठकों की पाती		3
श्रद्धा सुमन		
कुलदीपक घर में आया	डॉ0 अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
भारतीय जवानों के प्रति	पं0 पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	5
फिर सलाम आया तो क्या	राम प्रसाद 'विस्मिल'	6
हम लाए हैं तूफान से किश्ती निकाल के	प्रदीप	7
झण्डा ऊँचा रहे हमारा	श्याम लाल गुप्ता पार्षद	8
ये दिया बुझे नहीं	गेपाल सिंह नेपाली	9
विजयी के सदृश जियो रे	रामधारी सिंह 'दिनकर'	10
इतने ऊँचे उठो	द्वारिका प्रसाद महेश्वरी	11
है अँधेरी रात पर –	हरिवंश राय 'बच्चन'	12
जीवन का झरना	आरसी प्रसाद सिंह	13
तीनो बन्दर बापू के	नागार्जुन	14–15
खंडहर बचे हुए हैं	दुष्यंत कुमार	16
आजादी पर विशेष		
	रघुवीर सहाय, विष्णु नागर, शलभ श्रीराम सिंह	17
समय के सारथी		
पंद्रह अगस्त की पुकार	अटल बिहारी बाजपेयी	18
आजादी के टूटे फूटे सपने लेकर बैठा हूं	हरिओम पवार	19–21
कहने को है देश हमारा	रामदुलार सिंह पंकज	22
मेरा देश महान	नैमी चन्द्र जैन 'नैमी'	23
तुम हो प्रहरी लोकतंत्र के	डॉ0 अनिल सिंघाई 'नीर'	24
सीधी राह न कोई जाये	शिवकुमार बिलग्रामी	25
माटी चंद है	संजीवन मयंक	26
प्रवासी के बोल		
देश की खातिर जीना शान	देव नागरानी	27
अचेतनता का सफर	ब्रजेन्द्र सागर	28
अच्छा हुआ	अनिल प्रभा कुमार	29
अंहकार	सुदर्शन प्रियदर्शिनी	30
नारी स्वर		
एक दीप जलाऊँ	प्रज्ञा बजापेयी	31
आँख का मोती	रीना सेन	32
मैं कागज की नाव नहीं हूं	लक्ष्मी ठाकुर 'सुमन'	33
आउट डेटेड	डॉ॰ अंजनि भारती	34
चेतना	रश्मि मिश्र	35
नवांकुर		
हम क्या करें	अरुण सागर	36
किसको कौन उबारे	अवनीश सिंह चौहान	37
संसद	उदय शरण	38
मैं तराने गा नहीं सकता	रोहित चौधरी	39
गज़ल	डॉ अशोक मधुप	40

संपादकीय

आज़ादी तो मिल गई, मगर, यह गौरव कहाँ जुगायेगा ?
मरभुखे ! इसे घबराहट में तू बेच न तो खा जायेगा ?
आज़ादी रोटी नहीं, मगर दोनों में कोई वैर नहीं,
पर कहीं भूख बेताब हुई तो आज़ादी की खैर नहीं !

रामधारी सिंह 'दिनकर' की उक्त आशंका आज किस तरह चरितार्थ हो रही है, यह किसी से छिपा नहीं है । आज़ादी के तिरसठ वर्ष पूरे होने को हैं अर्थात् आज़ाद भारत के शुरूआती वर्षों में जो लोग पैदा हुए थे वे सेवानिवृत्त हो चुके हैं, या फिर सेवा निवृत्त होने वाले हैं । आजाद भारत की पहली पीढ़ी के कार्यकाल का पटाक्षेप हो रहा है दूसरी–तीसरी पीढ़ी के लोग भारत की तकदीर बनाने–बिगाड़ने में लगे हैं और चौथी पीढ़ी के युवा आजाद भारत की उपलब्धियों को लेकर गहरा असंतोष व्यक्त कर रहे हैं । वर्ष 1908 में जन्में रामधारी सिंह दिनकर ने उक्त पंक्तियां गत सदी के पांचवें दशक में लिखी थी और साठ साल बाद आज युवा पीढ़ी यह देख रही है कि–हमारे देश के मरभुखे कर्णधार किस तरह इसे बेंचकर खाने में लगे हुए हैं । किस तरह सत्ता की कमान थामने वाले हाथ, अपने निजी स्वार्थों के लिए सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित कर करोड़ो रुपयों का फायदा उठा रहे हैं और देश को अरबो रुपयों की चपत लगा रहे हैं । सत्ताधारी सफेदपोश किस तरह जनहितैषी नीतियों के बजाय उद्योग हितैषी नीतियों का समर्थन कर देश की टिकाऊ आर्थिक प्रगति में बाधा खड़ी कर रहे हैं यह आज की युवा पीढ़ी खूब देख–समझ रही है । हाल के सामाजिक आंदोलनों में करोड़ो लोग तमाशबीन नहीं थे । उनके अंदर मौजूदा व्यवस्था को लेकर न केवल क्षोभ और ग्लानि है, अपितु तीव्र आक्रोश भी है । सत्ता का मद सत्य को आंखों से ओझल कर क्षुद्र शासकों को भ्रम की स्थिति में रखता है, और अन्ततः उनके पतन के साथ ही उनका भ्रम दूर होता है । अभी हमारे कर्णधारों के हृदय में ये बातें बैठ गयी हैं कि प्रचुर धनार्जन कर और विषय वासनाओं में लिप्त रहकर ही हम सुखी–शांत रह सकते हैं और नैतिक मूल्य, सेवाधर्म, 'जीवमात्र का कल्याण हो' वसुधैव कुटुम्बकम' जैसे आदर्शवाक्य आचरण में उतारने वाली बातें नहीं हैं, तो उनकी यह सोच भी उनका एक भ्रम है, और उनके पतन के साथ ही उनका यह भ्रम दूर हो जायेगा ।

कवि, कलाकार और साहित्यकार सदियों से समाज को जगाने और दिग्भ्रमित लोगों को सावधान करने का कार्य करते रहे हैं । हमारी आज़ादी पर एक सटीक टिप्पणी करते हुए बलबीर सिंह 'रंग' ने एक बहुत ही अच्छी कविता लिखी है और उसकी कुछ पंक्तियां मैं यहां उद्धृत करना चाहूंगाः

उदित प्रभात हुआ फिर भी छाई चारों ओर उदासी
ऊपर मेघ भरे बैठे हैं, किन्तु धरा प्यासी की प्यासी
जब तक सुख के स्वप्न अधूरे
पूरा अपना काम न समझो
विजय मिली विश्राम न समझों

यहां पर मैं इतना और जोड़ना चाहूंगा कि–'जब तक सुख के स्वप्न अधूरे' की व्याख्या शासक वर्ग यह कतई न करे कि यह पंक्ति उसके अपने 'सुख के सपनों को पूरा करने का समर्थन करती है, जैसा कि आजकल हो रहा है, अपितु आजादी का मतलब है, जन सामान्य का सुख ।

प्रिय पाठको, इस आज़ादी विशेषांक में इस बार कुछ ऐसी चुनिंदा कविताओं को दिया जा रहा है, जिन्हें पढकर आप यह निर्णय ले पायेंगे कि आज़ादी के इतने वर्षों बाद कौन कितना आज़ाद हुआ है ।

शिवकुमार बिलग्रामी
संपादक

पाठकों की पाती

महोदय,

पारस–परस का श्रम विशेषांक पढ़ा । इसमें श्रम पर कई अच्छी कविताएं पढ़ने को मिलीं । निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' और धूमिल की 'मोचीराम' जैसी कालजयी रचनाएं पढ़ीं । लेकिन न जाने क्यों मुझे लगा कि 'श्रम' पर कुछ और अच्छी कविताओं को 'श्रम विशेषांक' में शामिल किया जा सकता था । यदि आप किसी विषय विशेष पर विशेषांक निकालना चाहते हैं तो आप समय रहते इसकी घोषणा पारस–परस के अंक में कर दिया करें ताकि कवि और पाठक उस विशिष्ट विषय पर समय रहते अपनी श्रेष्ठ रचनाएं आप तक पहुंचा सकें ।

सुरेश काला
गाजियाबाद

संपादक महोदय,

पारस–परस का अद्यतन अंक 'श्रम विशेषांक' पढ़ा । यह अंक मुझे काफी अच्छा लगा क्योंकि इसमें पिता और मां पर डॉ0 अनिल कुमार पाठक और गाफिल स्वामी की, जो कविताएं छपी हैं, वह मेरे मन को छू गयीं । मुझे डॉ0 दुर्गापाठक का गीत 'त्यागे तो भवधार में' भी काफी अच्छा लगा । यदि आप ग्रामीण परिवेश से जुड़ी कविताओं को अपनी पत्रिका में जगह देंगे तो, निश्चित रूप से इसके पाठकों की संख्या बढ़ेगी ।

शारदा प्रसाद मिश्र
हरदोई, उत्तर प्रदेश

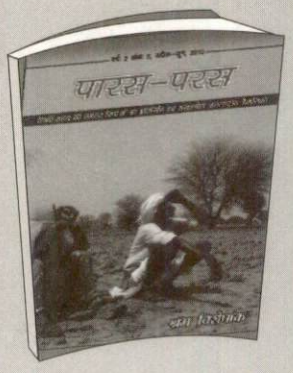

संपादकः आपका सुझाव स्वागत योग्य है । इसे नोट कर लिया गया है । यह सूचना देते हुए खुशी हो रही है कि पारस–परस का आगामी अंक अक्तूबर–दिसम्बर, 2012 **मां विशेषांक** के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है । सभी रचनाकारों से निवेदन है कि वो मां पर लिखी गयी अपनी रचनाओं को यथा शीघ्र संपादकीय कार्यालय में डाक द्वारा या फिर पत्रिका में दिये गए ई–मेल पर भेजने का कष्ट करें ।

सूचना

पारस–परस के पाठकों और योगदानकर्त्ताओं के लिए एक खुश खबरी यह है कि 'प्रसून प्रतिष्ठान प्रबंधन' ने स्वर्गीय पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की स्मृति में एक 'प्रसून प्रोत्साहन पुरस्कार' शुरू करने का निर्णय लिया है। इस पुरस्कार की राशि 1100 रूपये नकद है। यह पुरस्कार प्रत्येक अंक में प्रकाशित किसी ऐसी उत्कृष्ट रचना को दिया जायेगा जिसमें काव्य का मर्म और धर्म समाहित हो और जो काव्य की कसौटी पर खरी उतरती है। यदि एक से अधिक रचनाएं पुरस्कृत करने योग्य पायी गयीं तो राशि को तद्नुसार विभक्त कर दिया जायेगा।

पुरस्कार के बारे में अंतिम निर्णय प्रसून प्रतिष्ठान प्रबंधन का होगा और इस बारे में प्रबंधन के निर्णय को चुनौती नहीं दी जा सकती।

रचनाकार अपनी रचनाएं कृपया निम्नलिखित पते पर भेजें–

संपादक : पारस–परस
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभय खण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)
email : paarasparas.pathak@gmail.com

कुल दीपक घर में आया

– डॉ. अनिल कुमार पाठक

माँ ने प्रमुदित हो जना जिसे
कुल दीपक घर में आया
मातु पिता का असमय वियोग
प्यारा किशलय कुम्हलाया

पर मातु–पिता के अदृश कृपा
की पाकर शीतल छाया ।
बचपन से ही बना स्वावलम्बी
सत्पथ को अपनाया ।।

संघर्षों में पला–बढ़ा वह
तनिक नहीं घबराया ।
श्रेयस्कर कर्तव्य है केवल,
कभी नहीं शरमाया ।।

मिला कंध से कंध चला वह
सबको ही अपनाया ।
पिछड़े–बिछुड़े और अकिंचन,
सबको गले लगाया ।।

दृढ़ प्रतिज्ञ औ' ललक प्रगति की,
जो चाहा सो पाया ।
कुछ भी नहीं असम्भव जग में
करके यह दिखलाया ।।

कवलित काल नहीं कर सकता
तूने जो नाम कमाया ।
कालजयी युग पुरुष योगेश्वर
कर स्नेह कृपा की छाया ।।

भारतीय जवानों के प्रति

– पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

ओ मेरे जन्म भूमि के प्रहरी, जो भारत के सच्चे त्राता ।
देख तुम्हारे रण–कौशल को, देश तुम्हारा फिर से जागा ।।

तुम अजेय, निर्बाध तुम्हारा बल, पौरुष अरु विक्रम,
संसार विदित है अमित तुम्हारा साहस और पराक्रम ।
जिस ओर तुम्हारे नेत्र उठे, जल उठी प्रलय की ज्वाला,
युद्ध भूमि में दी बिखेर तुमने अरि–मुण्डों की माला ।
जिस ओर तुम्हारे चरण बढ़े, अरि सिर के बल भागा,
रूद्र–वेश यह देख तुम्हारा, देश तुम्हारा फिर से जागा ।।

माँ भारत की रक्षा में है, अर्पित तुमने सर्वस्व किया,
सुमनों सा अपना शीश चढ़ा, तुमने माँ को उन्मुक्त किया ।
यह त्याग तुम्हारे बलिदानों का, धरती पर गीत अमर होगा ।
हर समय तुम्हारी पूजा में, घर आँगन में नव–दीप जलेगा,
ओ वीर–देश के समर–वीर ! तेरी यह कीर्ति सदा गूँजेगी ।
मातृ–भूमि की रक्षा में तुमने, माँ की ममता को भी त्यागा,
तेरे संकल्पों की छाया में, यह देश तुम्हारा फिर से जागा ।।

फिर सलाम आया तो क्या !

– राम प्रसाद 'बिस्मिल'

मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या !
दिल की बर्बादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या !

मिट गईं जब सब उम्मीदें मिट गए जब सब ख़याल,
उस घड़ी ग़र नामावर लेकर पयाम आया तो क्या !

ऐ दिले–नादान मिट जा तू भी कू–ए–यार में,
फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या !

काश ! अपनी ज़िंदगी में हम वो मंजर देखते
यूँ सरे–तुर्बत कोई महशर–खिराम आया तो क्या !

आख़िरी शब दीद के काबिल थी 'बिस्मिल' की तड़प,
सुब्ह–दम कोई अगर बाला–ए–बाम आया तो क्या !

oOo oOo oOo

इलाही ख़ैर वो हर दम नई बेदाद करते हैं
हमें तोहमत लगाते हैं जो हम फरियाद करते हैं

ये कहकर बसर की उम्र हमने कैदे उल्फत में
वो अब आज़ाद करते हैं, वो अब आज़ाद करते हैं

सितम ऐसा नहीं देखा ज़फा ऐसी नहीं देखी
वो चुप रहने को कहते हैं जो हम फरियाद करते हैं

हम लाये हैं तूफ़ान से किश्ती निकाल के

— प्रदीप

पासे सभी उलट गए दुश्मन की चाल के
अक्षर सभी पलट गए भारत के भाल के
मंजिल पे आया मुल्क हर बला को टाल के
सदियों के बाद फ़िर उड़े बादल गुलाल के

हम लाये हैं तूफ़ान से किश्ती निकाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के
तुम ही भविष्य हो मेरे भारत विशाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के

देखो कहीं बरबाद न होवे ये बगीचा
इसको ह्रदय के खून से बापू ने है सींचा
रक्खा है ये चिराग शहीदों ने बाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के

दुनियाँ के दांव पेंच से रखना न वास्ता
मंजिल तुम्हारी दूर है लंबा है रास्ता
भटका न दे कोई तुम्हें धोखे में डाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के

एटम बमों के जोर पे ऐंठी है ये दुनियाँ
बारूद के इक ढेर पे बैठी है ये दुनियाँ
तुम हर कदम उठाना जरा देखभाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के

आराम की तुम भूल–भुलैया में न भूलो
सपनों के हिंडोलों में मगन हो के न झूलो
अब वक़्त आ गया मेरे हंसते हुए फूलों
उठो छलांग मार के आकाश को छू लो
तुम गाड़ दो गगन में तिरंगा उछाल के
इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के

झण्डा ऊँचा रहे हमारा

– श्यामलाल गुप्ता 'पार्षद'

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा–2
झण्डा ऊँचा रहे हमारा

सदा शक्ति बरसाने वाला
प्रेम सुधा सरसाने वाला
वीरों को हर्षाने वाला
मातृ भूमि का तन मन सारा –2
झण्डा ऊँचा रहे हमारा.....

स्वतंत्रता के भीषण रण में
रख कर जोश बढ़े क्षण–क्षण में
काँपे शत्रु देखकर मन में
मिट जाये भय संकट सारा–2
झण्डा ऊँचा रहे हमारा.....

इस झण्डे के नीचे निर्भय
हो, स्वराज जनता का निश्चय
बोलो भारत माता की जय
स्वतंत्रता ही ध्येय हमारा–2
झण्डा ऊँचा रहे हमारा.....

आओ प्यारे वीरों आओ
देश धरम पर बलि–बलि जाओ
एक साथ सब मिल कर गाओ
प्यारा भारत देश हमारा
झण्डा ऊँचा रहे हमारा.....

शान न इसकी जाने पाये
चाहे जान भले ही जाये
विश्व विजयी कर के दिखलाएं
तब होए प्रण पूर्ण हमारा–2
झण्डा ऊँचा रहे हमारा.....

ये दिया बुझे नहीं

– गोपाल सिंह नेपाली

यह दिया बुझे नहीं
घोर अंधकार हो
चल रही बयार हो
आज द्वार–द्वार पर यह दिया बुझे नहीं
यह निशीथ का दिया ला रहा विहान है ।
शक्ति का दिया हुआ
शक्ति को दिया हुआ
भक्ति से दिया हुआ
यह स्वतंत्रता–दिया
रुक रही न नाव हो
जोर का बहाव हो
आज गंग–धार पर यह दिया बुझे नहीं
यह स्वदेश का दिया प्राण के समान है ।
यह अतीत कल्पना
यह विनीत प्रार्थना
यह पुनीत प्रार्थना
यह पुनीत भावना
यह अनंत साधना
शांति हो, अशांति हो
युद्ध, संधि, क्रांति हो
तीर पर, कछार पर, यह दिया बुझे नहीं
देश पर, समाज पर, ज्योति का वितान है ।
तीन–चार फूल हैं
आस–पास धूल है
बांस है बबूल है
घास के दुकूल हैं
वायु भी हिलोर दे
फूंक दे, चकोर दे
कब्र पर मज़ार पर, यह दिया बुझे नहीं
यह किसी शहीद का पुण्य–प्राण दान है ।
झूम–झूम बदलियाँ
चूम–चूम बिजलियाँ
आँधिया उठा रहीं
हलचलें मचा रहीं
लड़ रहा स्वदेश हो
यातना विशेष हो
क्षुद्र जीत–हार पर, यह दिया बुझे नहीं
यह स्वतंत्र भावना का स्वतंत्र गान है ।

न मेरा है न तेरा है ये हिन्दुस्तान सबका है
नहीं समझी गई ये बात तो नुकसान सबका है

–उदय प्रताप सिंह

विजयी के सदृश जियो रे

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

वैराग्य छोड़ बाँहों की विभा संभालो
चट्टानों की छाती से दूध निकालो
है रुकी जहाँ भी धार शिलाएं तोड़ो
पीयूष चन्द्रमाओं का पकड़ निचोड़ो
चढ़ तुंग शैल शिखरों पर सोम पियो रे
योगियों नहीं, विजयी के सदृश जियो रे

जब कुपित काल धीरता त्याग जलता है
चिनगी बन फूलों का पराग जलता है
सौन्दर्य बोध बन नयी आग जलता है
ऊँचा उठकर कामार्त्त राग जलता है
अम्बर पर अपनी विभा प्रबुद्ध करो रे
गरजे कृशानु तब कंचन शुद्ध करो रे
जिनकी बाँहें बालमयी ललाट अरुण है
भामिनी वही तरुणी नर वही तरुण है
है वही प्रेम जिसकी तरंग उच्छल है
वारुणी धार में मिश्रित जहाँ गरल है
उद्याम प्रीति बलिदान बीज बोती है
तलवार प्रेम से और तेज होती है
छोड़ो मत अपनी आन, सीस कट जाये
मत झुको अनय पर भले व्योम फट जाये

दो बार नहीं यमराज कण्ठ धरता है
मरता है जो एक ही बार मरता है
तुम स्वयं मृत्यु के मुख पर चरण धरो रे
जीना हो तो मरने से नहीं डरो रे

स्वातंत्र्य जाति की लगन व्यक्ति की धुन है
बाहरी वस्तु यह नहीं भीतरी गुण है
वीरत्व छोड़ पर का मत चरण गहो रे
जो पड़े आन खुद ही सब आग सहो रे
जब कभी अहम पर नियति चोट देती है
कुछ चीज़ अहम से बड़ी जन्म लेती है
नर पर जब भी भीषण विपत्ति आती है
वह उसे और दुर्धुर्ष बना जाती है
चोटें खाकर बिफरो, कुछ अधिक तनो रे
धधको स्फुलिंग में बढ़ अंगार बनो रे
उद्देश्य जन्म का नहीं कीर्ति या धन है
सुख नहीं धर्म भी नहीं, न तो दर्शन है
विज्ञान ज्ञान बल नहीं, न तो चिंतन है
जीवन का अंतिम ध्येय स्वयं जीवन है
सबसे स्वतंत्र रस जो भी अनघ पियेगा
पूरा जीवन केवल वह वीर जियेगा

इतने ऊँचे उठो

– द्वारिका प्रसाद महेश्वरी

इतने ऊँचे उठो कि जितना उठा गगन है ।
देखो इस सारी दुनिया को एक दृष्टि से
सिंचित करो धरा, समता की भाव वृष्टि से
जाति भेद की, धर्म–वेश की
काले गोरे रंग–द्वेष की
ज्वालाओं से जलते जग में
इतने शीतल बहो कि जितना मलय पवन है ।।
नये हाथ से, वर्तमान का रूप सँवारो
नयी तूलिका से चित्रों के रंग उभारो
नये राग को नूतन स्वर दो
भाषा को नूतन अक्षर दो
युग की नयी मूर्ति–रचना में
इतने मौलिक बनो कि जितना स्वयं सृजन है ।।

लो अतीत से उतना ही जितना पोषक है
जीर्ण–शीर्ण का मोह मृत्यु का ही द्योतक है
तोड़ो बन्धन, रुके न चिंतन
गति, जीवन का सत्य चिरन्तन
धारा के शाश्वत प्रवाह में
इतने गतिमय बनो कि जितना परिवर्तन है ।
चाह रहे हम इस धरती को स्वर्ग बनाना
अगर कहीं हो स्वर्ग, उसे धरती पर लाना
सूरज, चाँद, चाँदनी, तारे
सब हैं प्रतिपल साथ हमारे
दो कुरूप को रूप सलोना
इतने सुन्दर बनो कि जितना आकर्षण है ।।

है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है

— हरिवंश राय बच्चन

कल्पना के हाथ से कमनीय जो मंदिर बना था
भावना के हाथ ने जिसमें वितानों को तना था
स्वप्न ने अपने करों से था जिसे रुचि से सँवारा
स्वर्ग के दुष्प्राप्य रंगों से, रसों से जो सना था
ढह गया वह तो जुटाकर ईंट, पत्थर, कंकड़ों को
एक अपनी शांति की कुटिया बनाना कब मना है
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है

बादलों के अश्रु से धोया गया नभ–नील नीलम
का बनाया था गया मधुपात्र मनमोहक, मनोरम
प्रथम ऊषा की किरण की लालिमा–सी लाल मदिरा
थी उसी में चमचमाती नव घनों में चंचला सम
वह अगर टूटा मिलाकर हाथ की दोनों हथेली
एक निर्मल स्रोत से तृष्णा बुझाना कब मना है
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है

क्या घड़ी थी, एक भी चिंता नहीं थी पास आई
कालिमा तो दूर, छाया भी पलक पर थी न छाई
आँख से मस्ती झपकती, बात से मस्ती टपकती
थी हँसी ऐसी जिसे सुन बादलों ने शर्म खाई
वह गई तो ले गई उल्लास के आधार, माना
पर अथिरता पर समय की मुसकराना कब मना है
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है

हाय, वे उन्माद के झोंके कि जिनमें राग जागा
वैभवों से फेर आँखें गान का वरदान माँगा
एक अंतर से ध्वनित हों दूसरे में जो निरंतर
भर दिया अंबर–अवनि को मत्तता के गीत गा–गा
अंत उनका हो गया तो मन बहलने के लिए ही
ले अधूरी पंक्ति कोई गुनगुनाना कब मना है
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है

हाय, वे साथी कि चुंबक लौह–से जो पास आए
पास क्या आए, हृदय के बीच ही गोया समाए
दिन कटे ऐसे कि कोई तार वीणा के मिलाकर
एक मीठा और प्यारा ज़िन्दगी का गीत गाए
वे गए तो सोचकर यह लौटने वाले नहीं वे
खोज मन का मीत कोई लौ लगाना कब मना है
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है

क्या हवाएँ थीं कि उजड़ा प्यार का वह आशियाना
कुछ न आया काम तेरा शोर करना, गुल मचाना
नाश की उन शक्तियों के साथ चलता ज़ोर किसका
किंतु ऐ निर्माण के प्रतिनिधि, तुझे होगा बताना
जो बसे हैं वे उजड़ते हैं प्रकृति के जड़ नियम से
पर किसी उजड़े हुए को फिर बसाना कब मना है
है अँधेरी रात पर दीवा जलाना कब मना है

जीवन का झरना

– आरसी प्रसाद सिंह

यह जीवन क्या है ? निर्झर है, मस्ती ही इसका पानी है ।
सुख–दुख के दोनों तीरों से चल रहा राह मनमानी है ।

कब फूटा गिरि के अंतर से ? किस अंचल से उतरा नीचे ?
किस घाटी से बह कर आया समतल में अपने को खींचे ?

निर्झर में गति है, जीवन है, वह आगे बढ़ता जाता है !
धुन एक सिर्फ है चलने की, अपनी मस्ती में गाता है ।

बाधा के रोड़ों से लड़ता, वन के पेड़ों से टकराता,
बढ़ता चट्टानों पर चढ़ता, चलता यौवन से मदमाता ।

लहरें उठती हैं, गिरती हैं, नाविक तट पर पछताता है ।
तब यौवन बढ़ता है आगे, निर्झर बढ़ता ही जाता है ।

निर्झर कहता है, बढ़े चलो ! देखो मत पीछे मुड़ कर !
यौवन कहता है, बढ़े चलो ! सोचो मत होगा क्या चल कर ?

चलना है, केवल चलना है ! जीवन चलता ही रहता है !
रुक जाना है मर जाना ही, निर्झर यह झड़ कर कहता है ।

कर्तव्यों की चाह नहीं, अधिकार के भूखे लोग
रिश्तों में पैसे ढूंढें, व्यापार के भूखे लोग
भीतर–भीतर नफरत करते, प्यार के भूखे लोग
शाम ढले विधवा तन पर श्रंगार के भूखे लोग

– डॉ0 सुनील जोगी

तीनों बन्दर बापू के

– नागार्जुन

बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के !
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बन्दर बापू के !
सचमुच जीवनदानी निकले तीनों बंदर बापू के !
ग्यानी निकले, ध्यानी निकले तीनों बंदर बापू के !
जल–थल–गगन–बिहारी निकले तीनों बंदर बापू के !
लीला के गिरधारी निकले तीनों बंदर बापू के !

सर्वोदय के नटवरलाल
फैला दुनिया भर में जाल
अभी जियेंगे ये सौ साल
ढाई घर घोड़े की चाल
मत पूछो तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवरलाल

लम्बी उमर मिली है, खुश हैं तीनों बंदर बापू के !
दिल की कली खिली है, खुश हैं तीनों बंदर बापू के !
बूढ़े हैं फिर भी जवान हैं खुश हैं तीनों बंदर बापू के !
सौवीं बरसी मना रहे हैं खुश हैं तीनों बंदर बापू के !
बापू को ही बना रहे हैं खुश हैं तीनों बंदर बापू के !

बच्चे होंगे मालामाल
खूब गलेगी उनकी दाल
औरों की टपकेगी राल
इनकी मगर तनेगी पाल
मत पूछो तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवरलाल

सेठों के हित साध रहे हैं तीनों बंदर बापू के !
युग पर प्रवचन लाद रहे हैं तीनों बंदर बापू के !

सत्य अहिंसा फाँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के !
पूँछों से छबि आँक रहे हैं तीनों बंदर बापू के !
दल से ऊपर, दल के नीचे तीनों बंदर बापू के !
मुस्काते हैं आँखें मीचे तीनों बंदर बापू के !

छील रहे गीता की खाल
उपनिषदें हैं इनकी ढाल
उधर सजे मोती के थाल
इधर जमे सतजुगी दलाल
मत पूछो तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवरलाल

मूंड रहे दुनिया–जहान को तीनों बंदर बापू के !
चिढ़ा रहे हैं आसमान को तीनों बंदर बापू के !
करें रात–दिन टूर हवाई तीनों बंदर बापू के !
बदल–बदल कर चखें मलाई तीनों बंदर बापू के !
गाँधी–छाप झूल डाले हैं तीनों बंदर बापू के !
असली हैं, सर्कस वाले हैं तीनों बंदर बापू के !

दिल चटकीला, उजले बाल
नाप चुके हैं गगन विशाल
फूल गए हैं कैसे गाल
मत पूछो तुम इनका हाल
सर्वोदय के नटवरलाल

हमें अँगूठा दिखा रहे हैं तीनों बंदर बापू के !
कैसी हिकमत सिखा रहे हैं तीनों बंदर बापू के !
प्रेम–पगे हैं, शहद–सने हैं तीनों बंदर बापू के !
गुरुओं के भी गुरु बने हैं तीनों बंदर बापू के !
सौंवी बरसी मना रहे हैं तीनों बंदर बापू के !
बापू को ही बना रहे हैं तीनों बंदर बापू के !

खंडहर बचे हुए हैं

– दुष्यंत कुमार

खंडहर बचे हुए हैं, इमारत नहीं रही
अच्छा हुआ कि सर पे कोई छत नहीं रही

कैसी मशालें ले के चले तीरगी में आप
जो रोशनी थी वो भी सलामत नहीं रही

हमने तमाम उम्र अकेले सफ़र किया
हमपर किसी खुदा की इनायत नहीं रही

मेरे चमन में कोई नशेमन नहीं रहा
या यूँ कहो कि बर्क़ की दहशत नहीं रही

हमको पता नहीं था हमें अब पता चला
इस मुल्क में हमारी हकूमत नहीं रही

कुछ दोस्तों से वैसे मरासिम नहीं रहे
कुछ दुशमनों से वैसी अदावत नहीं रही

हिम्मत से सच कहो तो बुरा मानते हैं लोग
रो–रो के बात कहने की आदत नहीं रही

सीने में ज़िन्दगी के अलामात हैं अभी
गो ज़िन्दगी की कोई ज़रूरत नहीं रही

इनकी नज़र में आज़ादी

रघुवीर सहाय

राष्ट्रगीत में भला कौन वह
भारत भाग्य विधाता है
फटा सुथन्ना पहने जिसका
गुन हरचरना गाता है
मखमल टमटम बल्लम तुरही
पगड़ी छत्र चंवर के साथ
लोप छुड़ाकर ढोल बजाकर
जय–जय कौन कराता है
पूरब पच्छिम से आते हैं
नंगे–बूचे नरकंकाल
सिंहासन पर बैठा, उनको
तमगे कौन लगाता है ।
कौन–कौन है वह जन–गण–मन
अधिनायक वह महाबली
डरा हुआ मन बेमन जिसका
बाजा रोज बजाता है ।

विष्णु नागर

जन–गण–मन अधिनायक जय हे
जय हे, जय हे, जय हे
जय–जय, जय–जय, जय–जय–जय
जय–जय, जय–जय, जय–जय–जय
हे–हे, हे–हे, हे–हे, हे–हे हे
हें–हें, हें–हें, हें–हें, हें
हा–हा, ही–ही, हू–हू है
हे–है, हो–हौ, ह–ह, है
हो–हो, हो–हो, हो–हौ है
याहू–याहू, याहू–याहू, याहू है
चाहे कोई मुझे जंगली कहे !

सच्चाई को अपनाना आसान नही
दुनिया भर से झगड़ा करना पड़ता है

– नवाज़ देवबंदी

पंद्रह अगस्त की पुकार

– अटल बिहारी बाजपेयी

पंद्रह अगस्त का दिन कहता –
आजादी अभी अधूरी है ।
सपने सच होने बाकी है,
रावी की शपथ न पूरी है ।।

जिनकी लाशों पर पग धर कर
आजादी भारत में आई ।
वे अब तक हैं खानाबदोश
गम की काली बदली छाई ।।

कलकत्ते के फुटपाथों पर
जो आँधी–पानी सहते हैं ।
उनसे पूछो, पंद्रह अगस्त के
बारे में क्या कहते हैं ।।

हिंदू के नाते उनका दुःख
सुनते यदि तुम्हें लाज आती ।
तो सीमा के उस पार चलो
सभ्यता जहाँ कुचली जाती ।।

इंसान जहाँ बेचा जाता,
ईमान खरीदा जाता है ।
इस्लाम सिसकियाँ भरता है,
डालर मन में मुस्काता है ।।

भूखों को गोली नंगों को
हथियार पिन्हाए जाते हैं ।
सूखे कंठों से जेहादी
नारे लगवाए जाते हैं ।।

लाहौर, कराची, ढाका पर
मातम की है काली छाया ।
पख्तूनों पर, गिलगित पर है
गमगीन गुलामी का साया ।।

बस इसीलिए तो कहता हूँ
आजादी अभी अधूरी है ।
कैसे उल्लास मनाऊँ मैं ?
थोड़े दिन की मजबूरी है ।।

दिन दूर नहीं खंडित भारत को
पुनः अखंड बनाएंगे ।
गिलगित से गारो पर्वत तक
आजादी पर्व मनाएंगे ।।

उस स्वर्ण दिवस के लिए आज से
कमर कसें बलिदान करें ।
जो पाया उसमें खो न जाएं,
जो खोया उसका ध्यान करें ।।

यार पुराने छूट गये तो छूट गए
कांच के बर्तन टूट गए तो टूट गए
शहजादे के खेल खिलोने थोड़े ही थे
मेरे सपने टूट गए तो टूट गए

– जतिन्दर परवाज़

आज़ादी के टूटे–फूटे सपने लेकर बैठा हूँ

– हरिओम पंवार

मन तो मेरा भी करता है झूमूँ, नाचूँ, गाऊँ मैं
आजादी की स्वर्ण–जयंती वाले गीत सुनाऊँ मैं
लेकिन सरगम वाला वातावरण कहाँ से लाऊँ मैं
मेघ–मल्हारों वाला अन्तयकरण कहाँ से लाऊँ मैं
मैं दामन में दर्द तुम्हारे, अपने लेकर बैठा हूँ
आजादी के टूटे–फूटे सपने लेकर बैठा हूँ

घाव जिन्होंने भारत माता को गहरे दे रक्खे हैं
उन लोगों को जैड सुरक्षा के पहरे दे रक्खे हैं
जो भारत को बरबादी की हद तक लाने वाले हैं
वे ही स्वर्णजयंती का पैगाम सुनाने वाले हैं

आज़ादी लाने वालों का तिरस्कार तड़पाता है
बलिदानी–गाथा पर थूका, बार–बार तड़पाता है
क्रांतिकारियों की बलिवेदी जिससे गौरव पाती है
आज़ादी में उस शेखर को भी गाली दी जाती है
राजमहल के अन्दर ऐरे–गैरे तनकर बैठे हैं
बुद्धिमान सब गाँधी जी के बन्दर बनकर बैठे हैं

मैं दिनकर की परम्परा का चारण हूँ
भूषण की शैली का नया उदाहरण हूँ
इसीलिए मैं अभिनंदन के गीत नहीं गा सकता हूँ ।
मैं पीड़ा की चीखों में संगीत नहीं ला सकता हूँ ।।

इससे बढ़कर और शर्म की बात नहीं हो सकती
आजादी के परवानों पर घात नहीं हो सकती थी
कोई बलिदानी शेखर को आतंकी कह जाता है
पत्थर पर से नाम हटाकर कुर्सी पर रह जाता है
गाली की भी कोई सीमा है कोई मर्यादा है
ये घटना तो देश–द्रोह की परिभाषा से ज्यादा है

सारे वतन–पुरोधा चुप हैं कोई कहीं नहीं बोला
लेकिन कोई ये ना समझे कोई खून नही खौला
मेरी आँखों में पानी है सीने में चिंगारी है
राजनीति ने कुर्बानी के दिल पर ठोकर मारी है
सुनकर बलिदानी बेटों का धीरज डोल गया होगा
मगल पांडे फिर शोणित की भाषा बोल गया होगा

सुनकर हिंद–महासागर की लहरें तड़प गई होंगी
शायद बिस्मिल की गजलों की बहरें तड़प गई होंगी
नीलगगन में कोई पुच्छल तारा टूट गया होगा
अशफाकउल्ला की आँखों में लावा फूट गया होगा
मातृभूमि पर मिटने वाला टोला भी रोया होगा
इन्कलाब का गीत बसंती चोला भी रोया होगा

चुपके–चुपके रोया होगा संगम–तीरथ का पानी
आँसू–आँसू रोयी होगी धरती की चूनर धानी
एक समंदर रोयी होगी भगतसिंह की कुर्बानी
क्या ये ही सुनने की खातिर फाँसी झूले सेनानी
जहाँ मरे आजाद पार्क के पत्ते खड़क गये होंगे
कहीं स्वर्ग में शेखर जी के बाजू फड़क गये होंगे
शायद पल दो पल को उनकी निद्रा भाग गयी होगी
फिर पिस्तौल उठा लेने की इच्छा जाग गयी होगी

केवल सिंहासन का भाट नहीं हूं मैं
विरुदावलियाँ वाली हाट नहीं हूं मैं
मैं सूरज का बेटा तम के गीत नहीं गा सकता हूं ।
मैं पीड़ा की चीखों में सगीत नहीं ला सकता हूं ।।

शेखर महायज्ञ का नायक गौरव भारत भू का है
जिसका भारत की जनता से रिश्ता आज लहू का है
जिसके जीवन के दर्शन ने हिम्मत को परिभाषा दी
जिसने पिस्टल की गोली से इन्कलाब को भाषा दी
जिसकी यशगाथा भारत के घर–घर में नभचुम्बी है
जिसकी बेहद अल्प आयु भी कई युगों से लम्बी है

जिसके कारण त्याग अलौकिक माता के आँगन में था
जो इकलौता बेटा होकर आजादी के रण में था
जिसको खूनी मेंहदी से भी देह रचाना आता था
आजादी का योद्धा केवल चना चबेना खाता था
अब तो नेता सड़कें, पर्वत, शहरों को खा जाते हैं
पुल के शिलान्यास के बदले नहरों को खा जाते हैं

जब तक भारत की नदियों में कल–कल बहता पानी है
क्रांति ज्वाल के इतिहासों में शेखर अमर कहानी है
आजादी के कारण जो गोरों से बहुत लड़ी है जी
शेखर की पिस्तौल किसी तीरथ से बहुत बड़ी है जी
स्वर्ण जयंती वाला जो ये मंदिर खड़ा हुआ होगा
शेखर इसकी बुनियादों के नीचे गड़ा हुआ होगा

मैं साहित्य नहीं चोटों का चित्रण हूँ
आजादी के अवमूल्यन का वर्णन है
मैं दर्पण हूँ दागी चेहरों को कैसे भा सकता हूँ
मैं पीड़ा की चीखों में संगीत नहीं ला सकता हूँ

तसल्लियों के इतने साल बाद अपने हाल पर
निगाह डाल, सोच और सोचकर सवाल कर
किधर गये वो वायदे ? सुखों के ख़्वाब क्या हुए ?
तू इनकी झूठी बात पर, न और ऐतबार कर
कि तुझको सांस–सांस का सही हिसाब चाहिए
घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिए !

– शलभ श्रीराम सिंह

कहने को है देश हमारा

– राम दुलार सिंह 'पंकज'

कहने को तो देश हमारा,
सब देशों से कितना न्यारा !
फिर भी मैं तो बहा रहा हूँ,
आँखों से आँसू की धारा ।

कहने को है देश हमारा,
हिन्द सभी देशों से प्यारा ।
फिर भी मैं तो भटक रहा हूँ,
जैसे लगता हूँ बंजारा ।

इतना विस्तृत देश हमारा,
पर जीने को कौन सहारा ।
तन ढकने को वस्त्र नहीं है,
फिर भी प्यारा देश हमारा ।

धरा जहाँ की संस्कृत प्यारी,
दुनिया गाती गीत हमारी ।
पर, पग–पग पर लूट मची है,
गली–गली है चोर बजारी ।

देखो, जिसकी भरी जवानी,
लूट रहे हैं अत्याचारी ।
रोटी की खातिर कन्यायें,
बिकती हैं – कैसी लाचारी ।

कहने को है देश हमारा ।
प्रजातंत्र है जिसका नारा ।

कहने को आजाद हुए हम
नव युग का निर्माण किये हम ।
धन पशुओं के सुख की खातिर,
बारम्बार गुलाम हुए हम ।

नेताओं के आगे–पीछे,
चक्कर में बदनाम हुए हम ।
सत्ता के हाथों ही देखो,
कितने पूर्ण–विराम हुए हम ।

गाँव छोड़कर बिके शहर में,
सट्टा औ बाजार हुए हम ।
पूंजीपतियों की खुशियों में,
रोटी से लाचार हुए हम !

चर्चा है अब भी लोगों में
आंखें देख रही लोगों में ।
जिसकी लाठी भैंस उसी की
आजादी अब भी लोगों में ।

देखो, देखो देश हमारा
सब देशों से कितना प्यारा ।

मेरा देश महान है

– नैमी चन्द जैन 'नैमी'

मातृभूमि के परवानों का प्यारा हिन्दुस्तान है ।
लाल किले पर आज तिरंगा बलिदानी पहचान है ।। मेरा देश महान है ।
आजादी के महासमर में खूब लड़े बुन्देले थे,
मर–मिटने की अमिट चाह के शूर–वीर अलबेले थे।
रानी झाँसी गौरव–गाथा गाता सकल जहान है ।। मेरा देश महान है ।
उत्तर–पूरब–दक्षिण जागे पश्चिम वीर मराठे थे,
अंग्रेजों के क्रूर–काल में कदम–कदम पर काँटे थे ।
रुके नहीं थे, झुके नहीं थे, रखा राष्ट्र बहुमान है ।। मेरा देश महान है ।
गोरी सत्ता टिक न सकेगी बापू का दृढ़ नारा था,
वीर भगत आजाद सभी ने तन–मन सारा बारा था ।
रणवीरों के खूँ से पाई आजादी वरदान है ।। मेरा देश महान है ।
अमर शहीदों की धरती पर बलिदानों का मान रहे,
अमर रहे अब राष्ट्र जागरण उन्नत पथ अभियान रहे ।
आगे बढ़कर नभ को छू लो ऊँची भरी उड़ान है ।। मेरा देश महान है ।
नहीं सहेंगे राष्ट्र द्रोह को, कुचलो अब जयचन्दों को,
सबक सिखा दो, मार भगा दो, दानव दुष्ट–दरिन्दों को ।
जागो–जागो देशवासियों करना नव निर्माण है ।। मेरा देश महान है ।
होम हुये जो वीर देश पर श्रद्धा–सुमन चढ़ायें हम,
जूझ रहे जो सीमाओं पर उनका मान बढ़ायें हम ।
प्राण भले ही जायें 'नैमी' रखना इनकी शान है ।। मेरा देश महान है ।

भगत सिंह इस बार न लेना
काया भारतवासी की
देशभक्ति के लिए आज भी
सजा मिलेगी फांसी की

शंकर शैलेन्द्र

तुम हो प्रहरी लोकतंत्र के

– डॉ. अनिल सिंघई 'नीर'

तुम हो प्रहरी लोकतंत्र के,
सजग और गंभीर बनो,
हो देश तुम्हारा यह अद्‌भुत,
तुम सावधान और धीर बनो ।

क्या लोकतंत्र के चोरों को,
घर में अपने घुसने दोगे ?
क्या भ्रष्ट जड़ों को तुम अपने,
आँगन में ही जमने दोगे,
क्या जात–पांत के भेदभाव,
तुम सीने में पलने दोगे,
क्या नाम धर्म का लेकर,
आग हृदय में जलने दोगे,
उठो ! और लड़ जाओ इनसे,
तुम सच्चे पहरेदार बनो ।

पहचानो उनको जो अब तक,
तुमको भ्रम मे रखते आये हैं
रोको, अपने ही लोगों को,
अब तक जो लड़ते आये हैं !
अल्लाह–ईश्वर के नामों में
भेद बताते जो आये हैं ।
एक नही बहुतेरे हैं ये,
तुम्हें फँसाते जो आये हैं
फंदों से बचकर इनके तुम
कर्मशील और कर्मवीर बनो ।

विफल तुम्हें ही करना होगा,
इनकी कुत्सित चालों को !
और सम्हाले रखना होगा,
ढालों से तलवारों को !
काट–काटकर फेंकना होगा,
राजनीति के जालों को !
एक साथ लाना ही होगा,
वतन पे मरने वालों को !
अपनी धरती की खातिर,
राष्ट्रभक्त और जयवीर बनो ।

साहब ने इस गुलाम को आज़ाद कर दिया
लो बन्दगी कि छूट गये बन्दगी से हम

– मोमिन

सीधी राह न कोई जाये

– शिवकुमार 'बिलग्रामी'

तरु सम अड़े खड़े हैं सब,
आड़े तिरछे फैल रहे ।
अवरूद्ध मार्ग सब किये हुए,
अब इनसे क्या कौन कहे ।।
काट–छांट है काम कठिन
जग का माली कौन बने.....

सब सब में टाँग अड़ाये,
सब के सब हैं बौराये ।
सबकी गति टेढ़ी–टेढ़ी,
सीधी राह न कोई जाये ।।
काट–छांट है काम कठिन
जग का माली कौन बने...

आज़ादी इनको लगती,
घर में ज्यों बैठी बुढिया ।
रोक टोक ये करती क्यों,
इनको चाहिए गूंगी गुड़िया ।।
काट–छांट है काम कठिन
जग का माली कौन बने...

वोट शक्ति के धारक ये,
सरकारों के मारक हैं ।
तगड़ों के दुर्बलकर्त्ता,
देवों के उद्धारक हैं ।।
काट–छांट है काम कठिन
जग का माली कौन बने....

माटी चंदन है

– सजीवन मयंक

प्रातः स्मरणीय शहीदों का वंदन है
जिनके त्याग तपोवन से माटी चंदन है

जिन्हें आत्म सम्मान रहा प्राणों से प्यारा
उन्हें याद करती अब भी गंगा की धारा
ले हाथों में शीश चले ऐसे मतवाले
आजादी के रखवालों को हृदय नमन है
जिनके त्याग तपोवन से माटी चंदन है

जिनकी दृढ़ता से उन्नत है आज हिमालय
अब उनके पद चिन्ह हमारे लिए शिवालय
आज तिरंगा जिनकी याद लिए फहराता
वक्त आज भी जिनकी गौरव गाथा गाता
धन्य नींव के पत्थर जिनपर बना भवन है
जिनके त्याग तपोवन से माटी चंदन है

महके बीज गुलाब गंध बाँटे खुशहाली
नव दुल्हन–सी खेतों में नाचें हरियाली
अनुशासन से देश नया जीवन पाता है
कर्मशील ही आगे जा पूजा जाता है
आज धरा खुशहाल और उनमुक्त गगन है
जिनके त्याग तपोवन से माटी चंदन है

उनके एक जाँ निसार हम भी हैं
हैं जहाँ सौ हज़ार हम भी हैं
– दाग

देश की खातिर जीना शान

– देवी नागरानी (अमेरिका से)

देश की खातिर जीना शान
देश की खातिर मरना शान
जिससे कम हो शान वतन की
ऐसा कुछ भी न कर नादान ।

भारत माँ है जननी मेरी
मैं उसकी लायक संतान
कहो करूँ क्या उसको अर्पण
तन, मन, धन और मेरी जान ।

जात न पात, न बोली, मज़हब
भेद न कोई, भाव यहाँ
हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई
भाई भाई एक समान ।

''आजादी'' अधिकार हमारा
बोल तिलक ने वार किया
उसकी खातिर नेताजी ने
कर दी अपनी जां कुरबान ।

सत्य अहिंसा, प्रेम व शांति
गाँधी जी का था फरमान
दुनिया को इक मार्ग दिखाए
देश मेरा यह हिंदुस्तान ।

गंगा जिसमें बहती देवी
भारत मेरा देश महान
उस मिट्टी का तिलक सजाऊँ
माथे पर मैं चंदन मान ।

अचेतनता का सफर

– ब्रजेन्द्र सागर (न्यूजीलैंड से)

पहाड़ी गुफ़ा का सीलन भरा ठंडा अंधापन
सिर से टपकती हुई पानी की बूंदों का आर्तनाद
वर्षों दूर से आती हुई कदमों की आहटें
न पीछे हटने देती हैं न आगे बढ़ने देती हैं
फिर जब कोई भय अनजाना सा–
कुंडली मार कर विष–दंत उड़ा देता है
ज़हर हादसों का व्यक्तित्व पर मेरे –
बढ़ता जाता है
और उन मौत से ठंडे अंधेरों से डर कर –
पागल चीखें मेरी निकलती हैं
और हाथ जब टकराते हैं
गुफ़ा की सीलन भरी छतों से
लिज़लिज़े स्पर्श से बचने की छटपटाहट में –
स्वयं को बौना किए जाता हूं
इस अचेतन विश्व के कैन्वस में –
कितनी ही ऐसी गुफाएं हैं
जहां निश दिन हम सब –
ढकेले जाते हैं
बचपन के अपूर्ण या अनजिए क्षणों का मूल्य –
इन अंधेरी गुफ़ाओं की उम्रकैदों में चुकाना पड़ता है

और हम –
अपना जीवन न जी कर –
इन अंधी गुफ़ाओं का जीवन ढोते हैं
इक गुफ़ा से निकलते हैं और दूसरी में कदम रखते हैं
और भय की छतों से बचने के लिए
जीवन भर स्वयं में बौनापन बढ़ाते जाते हैं
और इसीलिए अधिकतर शायद–
सूनेपन की मृत्यु पाते हैं
जीवन बन के रह जाता है बस–
अंधेरी कंदराओं का भयग्रस्त
लंबा सफर
बिखरता हुआ टूटता हुआ

अच्छा हुआ

– अनिल प्रभा कुमार (अमेरिका से)

बेशुमार लोगों के साथ
अंधा–धुंध दौड़ में
बस भागते जा रहे थे हम ।
किसको गिराया, किसने उठाया
कहाँ से चले, कहाँ पहुँचे
कुछ याद नहीं ।

वक्त के कितने मोड़ आए
उम्र के कितने पड़ाव पड़े
कितनी सच की दीवारें फाँदी
कितनी झूठ की ठोकरें खाईं
कुछ याद नहीं ।

याद रहा केवल
घुटनों का,
चरमरा कर गिर जाना
सब का हमें लाँघ कर निकल जाना ।

चलो अच्छा हुआ
दौड़ में पिछड़े तो क्या हुआ
सड़क तो दिखी
घुटने छिले
जमीन तो महसूस की ।
मिट्टी में हाथ सने
घास की नरम छुअन
तो जान ली ।

आँख उठाई तो
गगन की छाती में सिमटती
सूरज की लाली को देख लिया ।
चाँद–तारों भरी रात को
सागर की गोद में,
धीमे–धीमे तिरते देख लिया ।
वक्त की दौड़ में,
कहाँ देखा था यह सब
जो अब देख लिया ।
चलो जो हुआ,
अच्छा हुआ ।

अहंकार

– सुदर्शन प्रियदर्शिनी (मारीशस से)

चौकड़ी मार कर
बैठा रहता है
मेरे ऊपर
मेरा अहंकार
चमगादड़–सा लिपट जाता है
ज्यों–त्यों हर बार

कुछ न होने पर ही
चढ़ता है यह नशा
खाली चना बाजे घना का अवतार
कैसे उतारूँ या हटकूँ
इसे बार–बार

काश !
मार सकती मैं
इसे दुल्लती
फिर दुत्कारती इसे
यह घायल कुत्ते–सा
रिरियाता चूँ–चूँ करता
घुस जाता किसी और घर
छोड़ कर मेरा मन द्वार ।

अनन्त

उस दिन
अपने अन्दर के ब्रह्मांड में झाँका
कितनी भीड़ थी रिश्तों की नातों की
दौड़ थी भाग थी
हाथ पाँव चल रहे थे
एक पूरी दुनिया
इस ब्रह्मांड में समाई हुई थी ।

पर एक कोने में
मैंने देखा
मैं अपना ही हाथ थामे
अनंत को निहारते...
अकेले खड़ी हूँ ।

एक दीप जलाऊँ

– प्रज्ञा बाजपेई

दीवाली की शुभ बेला में
मैं भी तो एक दीप जलाऊँ
कहीं किसी अँधियारे घर में
बैठी होगी छिपी उदासी
नीरसता को लिये गोद में,
बेबस माता की ममता सी ।
सजल नयन का दीपक लेकर,
नीरसता में रस भर आऊँ.....

कर्ण बेधती कर्कश ध्वनियाँ
चकाचौंध से धूमिल गलियाँ ।
फिरे खुशी सहमी–सहमी सी
आतंकित विचलित हर जीवन
साज हृदय का सुर साँसों का
मीठी सी कोई तान सुनाऊँ.....

कुण्ठा के सूने आँगन में
रंग जहाँ छूने को हो ना,
टूटे डरे कसकते मन में
बेसुध सा बेरंगा कोना
जुटा कहीं से उम्मीदें कुछ
आशाओं के रंग भर आऊँ.....

दीवाली की शुभ बेला में
मैं भी तो एक दीप जलाऊँ ।

आँख का मोती

– रीना सेन

आँख का इक मोती हूँ मैं,
कब निकल जाऊँ
पता नहीं
लाता है समन्दर
बार–बार तूफानों को,
कब उसमें सिमट जाऊँ
पता नहीं ।

हूँ वो लहर जो
किनारे को छूती
छूकर, दूजे ही पल
दम तोड़ देती है ।

प्यास है मेरी छोटी
पर एहसास बड़े हैं,
आसमां छूने को ये
हाथ आज उठे हैं ।

करती नहीं दुनिया
कद्र हमारे सपनों की,
इस दुनिया को बदलने,
के हौंसले आज बुलन्द हैं ।
आँख का.... इक मोती हूं मै.....

रहता हूँ मन रूपी
सीप में, पर जब
निकल आऊँ बहा
सकता हूँ
पत्थरों को भी ।

न सोचना कभी भी
बस इक बूंद ही
तो हूं समन्दर
खाली कर सकता
हूँ, अपनी कमी से ।

तपती धूप में मुझे
महसूस करना,
जीवन रखता हूँ अपने
छोटे के रूप में ।

हो कभी इच्छा तो
मिलना मुझसे,
यहीं बसता हूँ मैं,
तुम्हारे मन के
छोटे से छोर में ।
आँख का.... इक मोती हूं मै.....

कि उसके दर पे बिना मांगे सब ही मिलता है
चला है रब की तरफ तो बिना सवाल के चल

– कुअँर बेचैन

मैं कागज की नाव नहीं हूँ

– लक्ष्मी ठाकुर

मैं कागज की नाव नहीं हूँ
जब चाहे जैसे तैराओ
न ही मैं कोई कठपुतली हूँ
बांध के धागा नाच नचाओ ।

मैं भारत के तपोभूमि की
महकी–महकी सी फुलवारी
मैं चाहूँ तो खुशबू बाँटू
मैं चाहूँ तो उगलूँ चिंगारी
अपने को सब कुछ मत समझो
उचित नहीं पल–पल टकराओ
मैं कागज की नाव नहीं हूँ
जब चाहे जैसे तैराओ ।

तुमसे कद है तुमसे पद है
अहंकार है, तुममें मद है
हर करनी की है इक सीमा
सहनशक्ति की भी इक हद है
तिनका जिसको समझ रहे हो
खुद को उससे मत उलझाओ
मैं कागज की नाव नहीं हूँ
जब चाहे जैसे तैराओ ।

आउट डेटेड

– डॉ. अंजलि भारती

ठीक कहा तुमने,
मैं आउट डेटेड हो गया हूँ
जब सारी दुनिया
ग्लोबल हो गई है
मैंने अपना दायरा
आज भी सीमित रखा है
माउस पर मेरी उँगलियाँ
जम सी जाती हैं –
कंप्यूटर का की बोर्ड
मेरे लिए
टाइपराइटर से बढ़कर
कुछ नहीं रहा
मोबाइल फोन
आज भी बेसिक सा
इस्तेमाल करता हूँ
डायरी में देखकर नंबर घुमाता हूँ
वाशिंग मशीन में कपड़े रखकर
प्रोग्राम भूल जाता हूँ
माइक्रोवेव देख–देख
ठंडा खाना खाता हूँ
इतना ही नहीं
म्यूजिक सिस्टम छोड़
विविध भारती बजाता हूँ
मैं तुम्हारा पिता
तुम्हें कैसे बताऊँ
मैं कहाँ–कहाँ घबराता हूँ ।
फिर भी मुझे गर्व हैं
जब तक तुम्हारा पुत्र
मैथ्स की प्राब्लम्स सॉल्व करने में
कैलकुलेटर पर अपनी उँगलियाँ
इधर–उधर करता है
तब तक पलक झपकते
मैं उसका हल ढूंढ लेता हूँ
इतिहास–भूगोल, हिन्दी–संस्कृत
के प्रश्नों में, जब वह
माथापच्ची करता नजर आता है
मैं उसकी सारी परेशानियाँ
अपने सिर ले लेता हूँ
स्कूल से घर लौट कर
दिन भर का थका–हारा
ममत्व की छाँव तलाशता
जब वह हताश हो जाता है
मैं अपनी धुँधली आँखों
और कांपते पैरों से
हँस–हँस कर
उसके खेल का साथी बन
उसमें नयी ऊर्जा भर देता हूँ
सोने से पहले
उसके 'गुडनाइट ग्रैड पा' में
नवजीवन पा जाता हूँ

फिर भी
मैं आऊट डेटेड हूँ
शायद इसलिए
कि तुम अप–टू–डेट रह सको ।

चेतना

– रश्मि मिश्रा

आज भी अहिल्या ठगी जाती है,
आज भी सीता हरी जाती है ।
आज भी सुग्रीव रोता है,
विभीषण घर–घर में बसता है ।।
आज भी रावण हँसता है,
कुंभकरण खर्राटे लेकर सोता है ।
मेघनाथ परमाणु बम रखता है,
क्यूं नहीं जगाते उस चेतना को ।।
जो रामरूप में सबके भीतर बसता है,
आज भी ताड़िका बेचती है ताड़ी ।
और सुबाहु पीकर हल्ला करता है,
सूपनखा रिझाती है सबको ।।
अहिरावण मन को हरता है,
हर युग के हर समाज में ।
इनका दर्शन होता है,
क्यों नहीं जगाते हम चेतना को ।।
जो राम रूप में
सबके भीतर बसता है ।

निवेदन

पारस–परस पूरी तरह से एक गैर–व्यावसायिक पत्रिका है । इसका एकमात्र उद्देष्य काव्य के माध्यम से हिन्दी कवियों के पैगाम को जन–जन तक पहुंचाना है । इस पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ रचनाकारों का नाम और उनसे संबंधित उचित जानकारी दी जाती है जिससे रचनाकार को उचित श्रेय मिलता है । इतना ही नहीं, हम प्रत्येक रचना के प्रकाशन से पूर्व संबद्ध रचनाकार से लिखित/मौखिक अनुमति का भी भरसक प्रयास करते हैं । फिर भी यदि किसी रचनाकार/कॉपीराइट धारक को कोई आपत्ति है तो उनसे अनुरोध है कि वह हिन्दी काव्य के प्रचार–प्रसार को ध्यान में रखते हुए, इस पत्रिका के योगदानकर्त्ताओं से हुई भूलवश गलती को क्षमा कर दें। यदि कॉपीराइटधारक को कोई आपत्ति है तो कृपया paarasparas.pathak@gmail.com पर सूचित कर दें ताकि पत्रिका के आगामी अंकों में उनकी रचनाएं प्रकाशित करने से पूर्व लिखित अनुमति सुनिश्चित की जा सके और इस संबंध में आवश्यक पहलुओं को ध्यान में रखा जा सके ।

इस कार्य को प्रसून–प्रतिष्ठान द्वारा जन–जागरूकता और जनहित की दृष्टि से किया जा रहा है । इस पत्रिका को प्राप्त करने के लिए संपादकीय कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।

हम क्या करें

– अरुण सागर

अब हमें लाये हो तुम ईमान के दरबार में
जब हमें आने लगा आनंद भ्रष्टाचार में

और भी हैं धन कमाने के कई साधन मगर
लाभ का प्रतिशत अधिक है, धर्म के व्यापार में

मेज के नीचे हैं फैले कुछ लिफाफे आपके
आप दफ्तर में हैं बैठे या किसी बाज़ार में

मुस्कुराकर शुभ दिवाली कह के वो तो चल दिये
और हम उलझे रहे उसके दिए उपहार में

हश्र जनता का हमें मालूम है, पर क्या करें ?
हम यकीं रखने को हैं मजबूर हर सरकार में

सर झुकाकर जी–हुजूरी उम्र–भर करते रहे
इससे ज़्यादा क्या मिला था हमको भी अधिकार में

गीत तो मीठे ही 'सागर' आप गाते थे सदा
तल्खियां आयीं कहाँ से आपके अशआर में

अगर हो जुल्म बेबस पर तो कर देते बगावत हम
नज़र में कुर्सियां रखकर नहीं करते सियासत हम
–राजेन्द्र निगम 'राज'

किसको कौन उबारे

– अवनीश सिंह चौहान

बिना नाव के
माझी देखे
मैंने नदी किनारे

इनके–उनके
ताने सुनना
दिन–भर देह गलाना
तीन रुपैया
मिले मजरी
नौ की आग बुझाना

अलग–अलग है
रामकहानी
टूटे हुए शिकारे !

बढ़ती जाती
रोज उधारी
ले–दे काम चलाना

रोज–रोज
झोपड़ पर अपने
नए तगादे आना

घात सिखाई है
तंगी ने
किसको कौन उबारे

भरा जलाशय
जो दिखता है
केवल बातें घोले
प्यासा तोड़ दिया
करता दम
मुख को खोले–खोले

अपने स्वप्न, भयावह
कितने
उनके सुखद सहारे

क्षमा करो बापू ! तुम हमको
बचन भंग के हम अपराधी
राजघाट को किया अपावन
मंज़िल भूले, यात्रा आधी
– अटल बिहारी वाजपेयी

संसद

– उदय शरण

शत–सहस्त्र वर्षों से सजते
अरमानों का सेहरा संसद
अपनों के सपनों से बनते
कोटि जनों का चेहरा संसद ।

पुरखों के, अगणित पितरों के
अस्थि–वज्र और चिता–भस्म से
वीरों के शोणित से सिंचित
भारत के सपनों की संसद ।

माथों की बिंदी, सुहाग से
आंखों के झरते मोती से
एक मुकुट, सिंदूर की कीमत
भारत के जन–जन की संसद ।

सदियों के टूटे सपनों का
सदियों से छूटे अपनों का
अपनों से रूठे अपनों का
एक दिलासा अपनी संसद ।

भूख, गरीबी और मंहगाई
भेदभाव की रहती खाई
कष्टों के पीछे रहस्य का
ढूंढ रही हल अपनी संसद ।

कितने आए, कितने बाकी
न्याय–सभा में सबके रहबर
किसने पोंछे कितने आंसू
खुली गवाही देती संसद ।

अरब–खरब लोगों की दुनिया
गुट–निर्गुट में बंधी–बंटी यह
विश्व जगत में न्याय–पक्ष का
प्रखर–मंच भारत की संसद ।

सुख में संसद, दुख में संसद
तिमिर, त्रास, विपदा में संसद
अंधकार की घोर घटा में
आशा की किरणों की संसद ।

राही कितने पहुंचे मंजिल
कितनी मंजिल छूटी पीछे
चलना अभी बहुत बाकी है
राह दिखाती अपनी संसद ।

कोसों दूर नज़र से ओझल
मन में टीस लिये बैठा जो
अंतिम जन के सुंदर कल का
एक भरोसा अपनी संसद ।

मैं तराने गा नहीं सकता

– रोहित चौधरी

अगर गुमसुम से चेहरों पर हँसी मैं ला नहीं सकता
मोहब्बत इश्क़ के फिर मैं तराने गा नहीं सकता

ज़ख्म पीड़ा की चीखों में समाहित हो रहे हों जब
मुझे दुनिया का फिर कोई तरन्नुम भा नहीं सकता

सजाते महफ़िलों को जो सितारों से कभी उनके
दिलों में अक्स माटी का कोई भी आ नहीं सकता

बसा लो आशियां अपना भले तुम चाँद पर लेकिन
मैं ठुकरा कर ज़मीं अपनी कहीं भी जा नहीं सकता

खुद को मानता कमजोर जो राहों की मुश्किल से
कभी 'रोहित' वो अपनी मंज़िलों को पा नहीं सकता

इस राज़ का इक मर्दे–फ़िरंगी ने किया फ़ाश
हर चंद कि दाना इसे खोला नहीं करते
जमहूरियत इक तर्ज़े–हुकूमत है कि जिसमें
बन्दों को गिना करते हैं तोला नहीं करते

– इक़बाल

आग दिल में लगी...

– डॉ. अशोक मधुप

आग दिल में लगी किस क़दर देखिये
जल गया है मेरा घर का घर देखिये

पास आये मगर फ़ासला रह गया
मेरी क़िस्मत के शामो–सहर देखिये

एक खुशबू फ़िजा में घुली हर तरफ़
कोई गुज़रा है महताब इधर देखिये

हक़–परस्तों का मैं राहबर था कभी
आज नेज़े पे है मेरा सर देखिये

दो कदम चल न पाया रहे – इश्क़ में
मुझको ऐसा मिला हमसफ़र देखिये

क़त्ल मेरा हुआ और मैं बेख़बर
क़ातिलों का ज़रा ये हुनर देखिये

हूँ ज़माने से ग़ाफिल 'मधुप' आजकल
ये तसव्वुर का उनके असर देखिये

जिस किसी दिन तुम उसूलों के कड़े हो जाओगे
बस उसी दिन अपने पैरों पर खड़े हो जाओगे
– आदिल रशीद

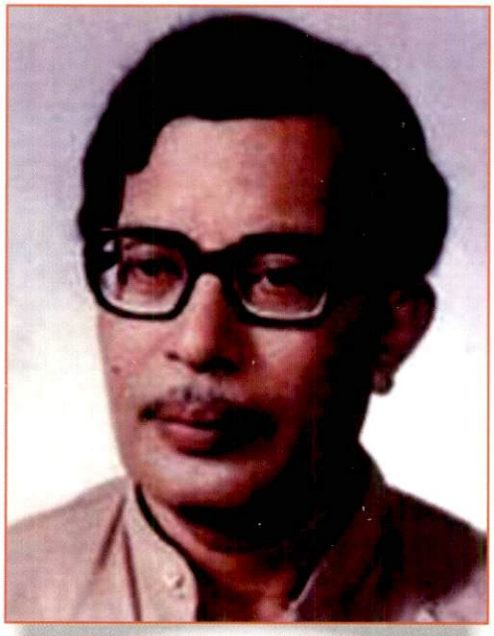

गोपाल सिंह नेपाली

(जन्मः 11 अगस्त, 1911; निधनः 17 अप्रैल, 1963)

रस गंगा लहरा देती है
मस्ती ध्वज फहरा देती है
चालीस करोड़ों की भोली
किस्मत पर पहरा देती है
संग्राम–क्रांति का बिगुल यही है,
यही प्यार की बीन क़लम
मेरा धन है स्वाधीन क़लम

पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

(जन्मः 17 जुलाई, 1932; निधनः 23 जनवरी, 2008)

व्यथित उर के इस सदन में या धरा की गोद में,
जगत की कठिनाइयों में या हृदय के गोद में,
चलता कभी जो रेत पर मिलती सलिल की धार भी
जिन्दगी मेरी प्रिये इस पार भी उस पार भी